छान्दोग्योपनिषद् में जीवः सक्षिप्त परिचय उच्च

वीना आनन्द
सह अध्यापक,
दार्शनिकशास्त्र विभाग,
एस. आर. गवर्नमेंट कालेज फार वूमेन,
अमृतसर

सारांश

छान्दोग्य उपनिषद् अध्यात्मिक अर्न्तदृष्टि तथा दार्शनिक तर्क प्रणाली का ग्रन्थ है इसकी शैली अत्यन्त क्रमवद और युक्ति–युक्त है। छान्दोग्य उपनिषद् आत्मचेतना के स्वरूप,उद्देश्य और दिशाधारा के निर्धारण में, अध्यात्म विज्ञान के तत्व–दर्शन, में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आत्मज्ञान के अर्न्तगत चेतना को समुन्नत बनाने वाले सभी प्रयास आ जाते है ,उन्हें अध्यात्म साधना कहा जाता है । इसमें आठ अध्याय हैं । उपनिषद् के छटे अध्याय में आरूणि का अद्वैतवाद है। दूसरे शब्दों में आत्मा और विश्वात्मा दोनों में कोई अन्तर नहीं है । इस उपनिषद् में आरूणि श्रेष्ठ तत्त्वज्ञानी है। जीव का शाब्दिक अर्थ है जो सांस लेता है, आरम्भ में इसमें मनुष्य की प्रकृति के उस जीव के विज्ञानीय पहलू का बोध होता है, जो जागृत, स्वप्न और निद्रा की अवस्थाओं में जीवन भर कायम रहता है, यही आत्मा है जो कर्मो का फल भोगती है और भौतिक शरीर के बाद भी कायम रहती है । आत्मा हमारी वास्तविक सत्ता है ।

मुख्य शब्द : छान्दोग्य उपनिषद्, जीव/शरीर, आत्मा, तत्त्वमसि

प्रस्तावना

मनुष्य के अध्यात्मिक इतिहास में उपनिषद् पिछले तीन हजार वर्ष से भारतीय दर्शन, धर्म और जीवन पर शासित करती आ रही है । प्रत्येक नये धार्मिक आन्दोलन को यह सिद्ध करना पड़ा कि यह उपनिषद् इनकी धार्मिक स्थापनाओं के अनुरूप है।उपनिषद् मनुष्य के जीवन –अस्तित्व के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण निर्धारित करने में सहायता देती है । उपनिषदों के प्रत्येक वाक्य में से मौलिक और उदात्त विचार फूटते है । उपनिषद मानव अस्तित्व के रहस्य पर बहुत ही सीधे, गहरे और विश्वासनीय ढंग में प्रकाश डालती है[1]। राधा कृष्णन के शब्दो में, 'प्रत्येक दर्शन' अपने विशेष सिद्धान्त के प्रतिपादन सर्वोच्च धार्मिक विवेचन को उसी प्रचलित भाषा का प्रयोग आवश्यक परिवर्तनो के साथ करता है इन दर्शनशास्त्रो में दार्शनिक विज्ञान आत्म– चेतन के रूप में विद्यमान है।''

उपनिषदों के विचारकों ने मनुष्य की चरम मुक्ति, ज्ञान की पूर्णता और अन्तिम सच की खोज की, जहां इस संसार के रहस्य जानने के लिए अध्यात्मिक जिज्ञासा है, वहां मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा भी है, ऐसे विचार न केवल हमारे मन को प्रकाश देते हैं बल्कि आत्मा को भी विकसित करते हैं। उपनिषदों का आदर, इसलिए है कि मनुष्य को आत्मिक शांति प्राप्त करने के लिए अर्न्तदृष्टि बल और प्रेरणा देती है ।

उपनिषद् शब्द 'उप' निकट, 'नि' नीचे और 'सद्' बैठना से मिलकर बना है अर्थात् नीचे निकट बैठना । शिष्यगण गुरू से गुप्त विद्या सीखने के लिए उसके निकट बैठते है, जिज्ञासु वनों में स्थापित आश्रमों के शान्त वातावरण में उन समस्याओं पर चिन्तन किया करते थे, जिनमें उनकी गहरी रूचि होती थी और वे अपना ज्ञान अपने निकट उपस्थित योग्य शिष्यों को दिया करते थे, ऋषि चाहते थे कि उनके शिष्यों की प्रवृति भोगवादी नहीं, अध्यात्मिक होनी चाहिए ।

उपनिषद्ों में 'ओम' शब्द का गहरा महत्व है,'तज्जलान' जैसे रहस्यवादी शब्द का जो केवल दीक्षित लोगों को ही समझ में आ सकते हैं, स्पष्ट किया गया है, 'उपनिषद् ' नाम एक ऐसे रहस्य के लिए पड़ गया, जो केवल कुछ परखे लोगों को ही बताया जाता था । शंकर उपनिषद् का अर्थ ब्रह्मज्ञान मानते हैं जिसके द्वारा अज्ञान से मुक्ति मिलती है, अज्ञान नष्ट हो जाता है, जिन ग्रंथो में ब्रह्मज्ञान की चर्चा रहती है वे उपनिषद् कहलाते हैं ।

वेदों में उल्लिखित अध्यात्मक अनुभवों की तार्किक आलोचना इन ग्रन्थों का विशय हैं[2]। छान्दोग्य उपनिषद् हमें अध्यात्मिक अर्न्तदृष्टि और दार्शनिक तर्क प्रणाली प्रदान करते हैं । उपनिषद्ों के विचार अवर्णनीय है केवल एक विशिष्ट जीवन प्रणाली से ही समझे जाते हैं । केवल निजी प्रयास से ही सत्य तक पहुँचा जाता है । सत्य ईश्वर के मुख से निकले हैं, या ऋषियों द्वारा देखे गए हैं, ये ज्ञान प्रत्यक्ष अनुमान तथा चिन्तन द्वारा नहीं हुआ है अपितु ऋषियों को इनका दर्शन हुआ हैं, जिसे दिव्य दृष्टि[3], अर्न्त–दृष्टि, दिव्यज्ञान, विश्वचेतना, और ईश्वर दर्शन आदि नाना संज्ञाए दी गई हैं । दिव्य दर्शन एक ऐसा निरपेक्ष सत्य का अनुभव है, जो उसकी चेतना पर आघात करता है, अनुभवकर्ता की आत्मा पर सत्य का धक्का लगता है । इसकी तुलना जीवनदायी श्वास से की गई है। यह एक ऐसा बीज है जो मानव–आत्मा को उर्वर कर देता हैं, एक ऐसी शिखा है जो उनके सूक्ष्मतम तंतुओं को प्रज्वलित कर देती है। अर्थात् उपनिषदें अमूल्य और अनेक प्रकार के आत्मिक अनुभव को प्रकट करती हैं, इनकी सच्चाईयों की पुष्टि केवल तर्कबुद्धि से नहीं, बल्कि निजी अनुभव से होती है । इनका लक्ष्य व्यवहारिक है ज्ञान मुक्ति का साधन है एक विशिष्ट जीवन प्रणाली द्वारा ज्ञान का अनुसरण ही दर्शन, ब्रह्मविद्या है ।

उपनिषद्ों के वेदान्त कहलाने का मुख्य कारण यह है कि वेद की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य और अभिप्राय उपनिषद्ों में ही मिलता है । उपनिषद्ों का विषय वेदान्त विज्ञान है। उपनिषदों के ऋषि पवित्र–ज्ञान के शिक्षणालय के महान शिक्षक है वे मानव जीवन के लिए ब्रहमज्ञान व अध्यात्मिक जीवन की सुन्दर व्याख्या करते है[4]। छान्दोग्य उपनिषद् हमें अध्यातमिक अर्न्तदृष्टि तथा दार्शनिक तर्क प्रणाली प्रदान करते है। उपनिषद्ों का विषय सत्य की खोज करना है : यदि निरे तर्क से मानव यथार्थ सत्य की प्राप्ति नही कर सकता, तो निश्चय ही उसे उन ऋषियों के महान लेखो की सहायता प्राप्त करनी चाहिए । हम कहां से उत्पन्न हुए, हम किसमें निवास करते हैं, हम कहां जाएंगे ? हम संसार में दुःख–सुख में किसके शासन में रहते हैं । किस इच्छा से प्रेरित होकर मन अपने उद्देश्य की ओर बढ़ता है ? किस आज्ञा से प्रथम प्राण बाहर आता है, किस इच्छा से हम वाणी बोलते हैं ? क्या इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान को अन्तिम और निश्चित माना जा सकता है ? क्या मन की शक्तियां अपने–आप में स्वतन्त्र सत्ता रखती हैं ? इन सब के पीछे कोई परमसत्ता अवश्य होनी चाहिए, जो स्वयंम्भू हो (जो) अपनी सत्ता के लिए किसी और पर आश्रित न हो । संसारिक सुख भोग–क्षण भंगुर है, जो बुढ़ापे एवं मृत्यु से नष्ट हो जाते हैं, केवल नित्य ही हमें स्थायी आनन्द दे सकता हैं, अर्थात् जिसे काल नहीं व्यापता, वह एक अध्यात्मिक सत्ता हैं जो दार्शनिकों की खोज का विषय हैं । हमारी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली एवं धर्म की प्राप्ति का लक्ष्य है । उपनिषद्ों में हमें इस यथार्थ सत्ता की प्राप्ति के लिए मार्ग बताए गए हैं । जो सदा ही सत्त, परम सत्य और आनन्द है प्रत्येक मानव हृदय की प्रार्थना है। डा0 राधा कृष्णन के शब्दों में,'' मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो, और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो''5

छान्दोग्य उपनिषद् बहुत ही महत्वपूर्ण है इसकी वर्णन शैली अत्यन्त क्रमवद और युक्ति युक्त है[6]। छान्दोग्य उपनिषद् आत्मचेतना के स्वरूप, उद्देश्य और दिशाधारा के निर्धारण में, अध्यात्म विज्ञान के तत्व दर्शन, ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है । आत्मज्ञान के अर्न्तगत चेतना को समुन्नत बनाने वाले सभी प्रयास आ जाते है, उन्हें अध्यात्म साधना कहा जाता है।इसमें आठ अध्याय हैं पहले अध्याय में कर्म काण्ड का प्रभाव है इसके अतिरिक्त ओंकार परमात्मा का प्रतीक होने के कारण परम उन्कृष्ट है । इसका विषय भौतिक– उद्देश्य पूर्ण मन्त्र– गाण है एक बार बकदाल्य, जसे ग्लाव –मैत्रेय भी कहतें हैं, वेद–पाठ करने के लिए एकान्त स्थान में गया, उसे सामने से एक सफेद कुता दिखाई दिया, शीघ्र ही कुत्तों का समूह इस कुत्ते के पास आया, और सफेद कुत्ते से कुछ मन्त्र–गाण करने की प्रार्थना करने लगा, क्योंकि वे सभी कुत्ते भूखे थे, उन्हें आशा थी कि मन्त्र बल से सफेद कुत्ता उनके लिए भोजन उत्पन्न कर देगा । सफेद कुत्ते ने अगले दिन प्रातः आने को कहा । बकदाल्य भी इस रहस्य को देखने के लिए दूसरे दिन आया [7]। उसने देखा कि जिस प्रकार से ब्राह्मण यज्ञ के साथ एक दूसरे का उत्तरीय पकड़ कर मन्त्र गान करतें हुए वेदिका की परिक्रमा करतें हैं, उसी प्रकार वे कुत्ते भी एक दूसरे की पूंछ पकड़ कर चक्राकार घूमने लगे । फर बैठकर मन्त्र गान किया । हिम ! ऊँ! आओ खाये! ऊँ! आओ पियें ऊँ! देवता हमें भोजन दो (ऊँ भोजन देवता ! हमें भोजन दो! हमें भोजन दो ऊँ[8]। ऐसा लगता है इस अध्याय में भौतिक उद्देश्य की अपेक्षा अध्यात्मिक ध्येय का महत्व है।

तीसरे अध्याय में सूर्य का प्रसिद्ध वर्णन है, ब्राह्मण पद्धति के अनुकूल गायत्री का वर्णन, एक विषाल अण्डे से सूर्य की उत्पति सूर्योपासना आदि अनेक विशय इसके अर्न्तगत है । वह पुरूष, जो इस प्रकार इस बह्ममाण्ड को सूर्य में स्थित जानता है, तेजस्वी और अन्न का भोग करने वाला होता है । वह पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, उज्जवल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पषुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है, तपते हुए सूर्य की निन्दा न करें [9], ऐसा नियम है । चौथे अध्याय में हम रैक्व का दर्शन सिद्धान्त, सत्यकाम जाबाल और उसकी माता की कथा और उपकोमल की कथा पाते हैं । जो अपने गुरू सत्यकाम जाबाल से तत्त्व–ज्ञान सीखता है, पाँचवें अध्याय में जैवली का परलोक–विषयक सिद्धान्त है जो बृहदारण्यकोपनिषद् के परलोक–शास्त्रसे मिलता जुलता है।छान्दोग्य उपनिषद् के छटे अध्याय में आरूणि का अद्वैतवाद है । दूसरे शब्दों में आत्मा और विश्वात्मा दोनों में कोई अन्तर नहीं है । इस उपनिषद् में आरूणि श्रेष्ठ तत्त्वज्ञानी है । आरूणि प्राचीन काल के एक प्रसिद्ध ऋषि थें । उन्होंने तत्त्वज्ञान में बड़ी ख्याति पाई थी, इसी उपनिषद् के सातवें अध्याय में नारद और सनत्कुमार का प्रसिद्ध संवाद है । अन्तिम आठवें अध्याय में आत्मनुभूति के लिए कुछ उपभोगी तथा उत्तम व्यावहारिक साधन दिये गए हैं । इसमें इन्द्र और विरोचन की कथा भी है ।

जीव का शाब्दिक अर्थ है जो सांस लेता है, आरम्भ में इसमें मनुष्य की प्रकृति के उस जीव के विज्ञानीय पहलू का बोध होता था, जो जागृत, स्वपन और

निद्रा की अवस्थाओं में जीवन भर कायम रहता है, यही आत्मा है जो कर्मो का फल भोगती है और भौतिक शरीर के बाद भी कायम रहती है । आत्मा हमारी वास्तविक सत्ता है । यथार्थसत्ता की विविध अवस्थाओं के परस्पर मिलने का लक्ष्य बिन्दु मानव है। शरीरस्थ प्राण, सांसारिक वायु के अनुरूप है । मानव आकाश के अनुरूप है, और शरीर पांच भूतों के अनुरूप है । यह व्यापक आत्मा है जो सर्वान्तर्यामी है, सर्वातिशायी है। समस्त ब्रह्माण्ड इसी के अन्दर निवास करता है और इसी के अन्तर उच्छवास लेता है । छान्दयोग्पनिषद की भिन्न–भिन्न सूक्तियां आत्मा की उत्पति के बारे में बताती है, ''चन्द्रमा और सूर्य इसके चक्षु हैं, अन्तरिक्ष की चारों दिशाएँ इसके कान हैं और वायु इसका उच्छवास है।'' ''आत्मैवेदं सर्वम्'' ऋषि आरूणि ने भिन्न–भिन्न दृष्टान्त देकर अपने पुत्र श्वेतकेतु को आत्मतत्व का उपदेश दिया है [10]।

जीव और संसार की उत्पत्ति कई तत्त्वों से हुई है, कहा गया है कि अग्नि, जल और पृथ्वी मिलकर अनन्त सत्ता के तत्त्व के साथ जीवात्मा की रचना करते हैं ।जो आत्मा को देखता है, सोचता है और समझता है जैसे जीवन श्वास (आत्मा) से बनता है । आशा आत्मा से निकलती है, यादाशत आत्मा से जन्म लेती है, आकाश आत्मा से उत्पन्न होता है, गर्मी आत्मा से उत्पन्न होती है, जल आत्मा से आकार और दर्शन आत्मा से ध्यान, विचार, निश्चितता, मन, भाशा, नाम, धार्मिक भजन, पावन कार्य आत्मा से उत्पन्न होते है अर्थात् इस प्रकार सारा विश्व आत्मा से उत्पन्न होता है । ये सब वस्तुए, जल, वायु, अग्नि, आशा यादाश्त आदि जो कि सत्य से उत्पन्न हुए समझे जाते थे, अब आत्मा से उत्पन्न हुए माने जाने लगे हैं । अतः आत्मा सत्य है और सत्य – आत्मा है । इसका अर्थ है कि आत्मा और सत्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । आत्मा से ही प्राण, आकाश, तेज, जल आदि सारे पदार्थो की उत्त्पत्ति हुई है । यह सब वस्तुएं अग्नि, जल और पृथ्वी मिलकर अनन्त सत्ता के तत्त्व को साथ लेकर जीवात्मा की सृष्टि करते हैं । संसार के जितने स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थ हैं सभी आत्मा या ब्रह्म के ही रूप हैं, जितनी वस्तुएँ संसार में हैं, सभी का सार आत्मा ही है । छान्दोग्य उपनिषद् में सबसे अधिक महत्त्व आत्मा को दिया गया है । यह कहा गया है कि आत्मा के समान दूसरी कोई वस्तु प्रिय नहीं है । आत्म बल की ज्योति शरीर को ओजस्वी, मस्तिष्क के तेजस्वी और अन्तःकरण को वर्चस्वी बनाती है[11]।

ब्रह्म या आत्मा का लक्षण देना एक प्रकार से असम्भव हैं, तथापि ऋषियों ने अनेक प्रकार से इसके स्वरूप का वर्णन किया है । यही आत्मा या ब्रह्म प्राण हमारे शरीर की रक्षा करता है, यही आत्मा है जो भूख–प्यास, षोक–मोह जन्म तथा मरण हमारा उत्थान करती है, आत्मा पूर्ण है।यही कारण है कि सत्त –असत्त, छोटा–बड़ा समीप–दूर, अन्तः बाहरी आदि सभी धर्मो का यह आधार है । सबसे पहले जीव चिन्तन करता है । मनुष्य चिन्तन के बाद संकल्प करता है । यह सब चित्त में ही केन्द्रित है। चित्त पर स्थिर है, यदि कोई मनुष्य चिन्तन नहीं करता चाहे वो कितना ही ज्ञानी क्यों न हों लोग उसके तर्को को स्वीकार नहीं करते, ज्ञान के लिए चिन्तन की अत्यधिक आवश्यकता है । चिन्तन से ज्ञान में वृद्धि होती है और नए अनुभव होते है। यदि कोई मनुष्य चिन्तनशील है तो चाहे वह थोड़ा ही ज्ञानी तो भी लोग उसकी बातें सुनने की इच्छा रखते हैं, उन्हें सुनते हैं और उन पर विचार भी करते हैं । चित्त आत्मा है, चित्त केन्द्र है, चित्त सबका आधार है । मैत्री उपनिषद् में भी इस सिद्धान्त को समर्थन प्राप्त हैं, वह मनुष्य केवल मन से ही देखता है, मन से ही

सुनता है,जिन्हें हम इच्छा, लज्जा, सन्देह, विचार, विश्वास, निश्चय, भय कहते हैं । वे सब केवल मन की अवस्थाएँ हैं अर्थात् मन में निवास करने वाली भावनाएँ हैं ।

शरीर व आत्मा में अन्तर

शरीर जड़ है । शरीर प्राण, वायु, अग्नि और आकाश का सुमेल है । छान्दोग्य उपनिषद् में जब आरूणि का पुत्र ष्वेतकेतु गुरूकुल से पढ़कर आया तो पिता ने अनुभव किया कि वह अभी भी घमण्डी है । उसने उसे कहा कि तूने आत्मा को नहीं समझा और देह पर गर्व करने वाले श्वेतकेतु को यह समझाना शुरू किया । 'कि तूं प्राकृत देहादि के समान जड़ न होकर ब्रह्म के समान चेतन तत्त्व है ।जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में यथार्थ सत्ता शरीर की नहीं, ब्रह्म की है, उसी प्रकार जीव में यथार्थ सत्ता शरीर की नहीं आत्मा की है । देहादि की रचना अचेतन रूप है, त्रिगुणात्मक है।जबकि आत्मा चेतन है एवं त्रिगुणातीत है ।''इस प्रकार से उघालक ने पुत्र को कई उदाहरणों के द्वारा समझा कर शरीर और आत्मा के भेद को स्पष्ट किया है[12]।

''जो सूक्ष्म है यह सब जगत आत्मा के लिए है, वह सत्य है, वह आत्मा है, हे ष्वेतकेतु तुम वही आत्मा हो ।''

''यह शरीर स्थूल है और आत्मा सूक्ष्म है यह जगतरूपी आत्मा स्थूल है और आत्मत्तत्व उससे भी सूक्ष्म कहा गया है । जीव की रचना जीवात्माओं के भोग की सिद्धि के लिए की गई हैं।'' नारद जी कहते हैं भगवान ! मैं केवल शास्त्रज्ञ हूँ, आत्मज्ञ नहीं हूँ [13]।

आत्मा के स्थान का प्रश्न अध्यात्मिक मनोविज्ञान से सम्बन्धित है । और जब यह प्रश्न पूछा जाता है कि दृष्टि से देना अस्वाभाविक नहीं । आत्मा एक व्यास रहित सत्ता है और समस्त आयतनिक कल्पनाओं से परे है। फिर भी अध्यात्मिक मनोविज्ञान ने शरीर के उन अंगों, जिनसे आत्मा का प्रधान सम्पर्क है की विवेचना से सम्बन्ध रखा है । आत्मा के स्थान के सम्बन्ध में अनेक मत विकसित हुए हैं । मनोविज्ञान कहता है ।' मन का स्थान मस्तिष्क की बाहरी त्वचा पर है।'' दार्शनिक मानते है कि आत्मा एक दिग्व्यापी तत्त्व है। देकार्त ने कल्पना की थी कि आत्मा का स्थान पीनियल ग्रन्थी हैं, प्लेटै मानते है। आत्मा का स्थान हृदय में है । उपनिषदिय मनोविज्ञान हृदय को आत्मा का स्थान मानने में अरिस्तु से सहमत है।यह आत्मा हृदय में है (हृदि अयम्) यह हृदय में हैं । आत्मा अपने हृदय में है ऐसा जानना चाहिए, प्रतिदिनइस प्रकार अध्ययन करके जानने वाला मनुष्य स्वर्गलोक हृदयपस्थ ब्रह्म को प्राप्त होता है [14]। उपनिषदों के अनुसार आत्मा हृदय से चलकर मस्तिष्क की ओर जाके इन पर प्रभुत्व स्थापित कर सकती है ।

छान्दोग्य का परलोक सिद्धान्त

उपनिषदों के विचारक प्रकृति के तथ्यों और जीवन के तथ्यों के विश्लेषण से जीव के सत्य को

प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं। कौन सा मार्ग देवताओं के पास ले जाता ? छान्दोग्य उपनिषद् मृत व्यक्तियों के लिए दो द्वारों के बारे में ज्ञान करवाता है: एक देवयान और दूसरा पितृयान । जो जीव तप करते हैं और विश्वास के रास्ते पर चल कर ज्ञान प्राप्त करते हैं, कभी मानवी जन्म–मरण के चक्कर में वापिस नहीं आते । जो जीव नैतिक कार्य करते हैं और समाज की भलाई के लिए कार्य करते हैं, धुएं के मार्ग द्वारा पितृों के पास जाते हैं, जब उनके नीचे आने का समय आता है, वह दोबारा जन्म लेकर (कर्मो के अनुसार) पृथ्वी पर आ जाते हैं। यह विवरण चाहे गलत हो परन्तु आत्मा के उद्‌गम और अवरोह के सिद्धान्त जो उपनिषदों में दिए हैं, इन पर बल देते हैं, अच्छे चरित्र वाले लोग अच्छे जन्म पाते हैं और बुरे चरित्र वाले लोग बुरे जन्म पाते हैं । स्वर्ग और नरक कर्मो से सम्बोधित है । नैतिक तथा धार्मिक मनुष्य तराजू के पलड़े पर ऊँचे उठेंगे और अनैतिक तथा पापी नीचे आएगें । जन्म और मृत्यु केवल मात्र जीवात्मा का शरीर के साथ संयोग तथा वियोग से सम्बंध ह[15]। अर्थात् छान्दोग्य उपनिषद् में मनुष्य की मृत्यु के बाद उसकी आत्मा की क्या दशा होती है ? परलोक सम्बन्धी ज्ञान को महत्त्वपूर्ण माना जाता हैं । कोई मनुष्य तब तक अपने आप को ज्ञानी नहीं समझ सकता था, जब तक वह यह नहीं जानता, कि मृत्यु के बाद उसकी क्या अवस्था होती हैं ?

संसारी जीव की चार अवस्थाएँः जागृत, स्वप्न, सुशुप्ति और मृत्यु। जागृत अवस्था में जीव मन के साहचर्य से हृदय में रहता है तथा मन और इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष कर्म करता हुआ समस्त शरीर पर शासन करता है । स्वप्न में इन्द्रियां विरक्त हो जाती हैं और मन सक्रिय रहता है और इन्द्रियां जहां विलीन हुई हैं, उस मन से घिरा हुआ जीव शरीर की नाड़ियों में व्याप्त होकर जागृत वासनाओं से रचित स्वप्न देखता है । सुशुप्ति में मन के साथ जीव का सम्बन्ध टूट जाता है, मन तथा इन्द्रियां विरत होकर पहले नाड़ियों में प्रवेश करते हैं और फिर मुख्य प्राण में जिसका व्यापार सुशुप्ति में भी होता रहता है, इसी बीच कुछ समय समस्त उपाधियों से मुक्त होकर जीव यह मुक्ति की एकमात्र अवस्था है । ब्रह्म के इस क्षणिक अभेद से निकल कर जीव जगने पर अपनी समस्त व्यक्तिगत विशिष्टताओं के साथ पुनः वही हो जाता है जो पहले था ।

तत्त्वमसि 'जीव से ब्रहम' की एकता को सिद्ध करता है । त्वम् तथ तत् में चैतन्य गुण समान है, शेष गुण मनुष्य की अज्ञानता के कारण कल्पित है । इसलिए उनका कोई महत्त्व नहीं है, अतः तत्त्वमसि कहने का अभिप्राय है कि त्वम् का चैतन्य ओर तत् का चैतन्य एक ही है । तुच्छ एवं आरोपित भेदक गुणों का परित्याग देने पर एक चैतन्य से दूसरे चैतन्य से भिन्न नहीं है। छान्दोग्योपनिषद् में गुरू और शिष्य अथवा पिता और पुत्र के संवाद में उदाहरणों द्वारा तत्त्वमसि का अर्थ उदाहरण द्वारा निम्न प्रकारों से स्पष्ट किया गया है [16]। आरम्भ में अद्वितीय असत् ही था। उस असत् से सत् की प्राप्ति होती है । किन्तु सोम्य, असत् से सत् की प्राप्ति (उत्पत्ति) कैसे हो सकती हैं । वास्तव में सत् ने तीन प्राकृतिक भूतों जल, तेज और अन्न को उत्पन्न किया और जीवात्मा से उनमें प्रवेश किया ।

तीन भूत सत् से उन्पन्न हुए वैसे जगत् की वस्तुएँ नये ढंग से इन तीन प्राकृतिक भूतों से उन्पन्न होती है, जो वस्तुएँ लाल होती हैं वह तेज, जो सफेद होती हैं, वह जल और जो काली होती हैं, वह अन्न होती हैं[17]। अन्न आदि का सूक्ष्म भाग ही मन होता है । इस तरह अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा तथा विद्युत के उदाहरण दिये जाते हैं और हर बार कहा जाता हैं,'' इस प्रकार अग्नि से अग्नित्व निकल गया (सूर्य से सूर्यत्व निकल गया आदि) क्योंकि अगिन रूप विकार वाणी से कहने के लिए नामात्र है, वह केवल तीन रूप है, इतना ही सत्य है, इसको जानते हुए प्राचीन काल के बुद्धिमान लोगों ने कहा है, '' इसके आगे कोई भी व्यक्ति ऐसी किसी वस्तु के बारे में नहीं बता सकता जिसके बारे में हमने न सुना हो या न जाना हो या न समझा हो ।'' मानव शरीर इन्हीं भूतों से बना है जिसमें दूध के फेन के समान, सूक्ष्म–भाग ऊपर जाते हैं और मानसिन्द्रयां बनती हैं । इस प्रकार मन अन्न से बनता हैं [18]। प्राण जल से बनता है, वाक् तेज से बनती है । इस प्रकार मनुष्य का मन लगातार उपवास करने से कमज़ोर हो जाता है जैसे सुलगती आग और ईधन दे देने से जल उठती है, वाक् उन्पन्न नहीं होते ।वे जीव के सहचर हैं ।

बीमार और मरणासन्न मनुष्य के चारों ओर उसके सम्बन्धी बैठते हैं और पूछते हैं, ''क्या तूं मुझे जान रहा है ? क्या तूं मुझे पहचान रहा हैं ?'' जब तक उसकी वाणी मन में नहीं होती तथा मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परम देवता में लीन नहीं होते तब तक वह उनको पहचानता हैं। किन्तु जब उसकी वाणी मन में लीन हो जाती हैं, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परम देवता में लीन हो जाते हैं तब तक उनको नहीं पहचानता है।वह अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व है, वह जगत् उसका स्वरूप है, वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु ! वह तू है[19]।

लोग किसी व्यक्ति को पकड़कर लाते हैं और कहतें हैं इसने चोरी की है।इसके लिए तपाओ। यदि वह लोहे से जल जाता है तो पता चलता है वह अपराधी है, और यदि वह लोहे से नहीं जलता तो पता चल जाता है कि वह अपराधी नहीं है''इससे ज्ञान प्राप्त होता है कि मिथ्या बंधन है और सत्य स्वतन्त्रता, जिसके द्वारा उसने अपने को जलाया नहीं, वही स्वरूप वाला यह सब जगत है ।वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतुकेतु वह तू है[20]।''

इस प्रकार सोन्य (श्वेतकेतु) के पिता ने उसे 'तत्त्वमसि' का ज्ञान करवाया और सारे रहस्य का अर्थ व्याख्यान किया और बलपूर्वक कहा कि वह जीवन की दार्शनिक एकता को ग्रहण करे और मानव जीवन के विष्व जीवन के साथ तारतम्य को भी समझने का प्रयत्न करे । हम आसानी के साथ उस परमसत्ता की कल्पना नहीं कर सकते । हम संसार में इतने अधिक लिप्त रहते हैं, सांसारिक अनुभवों में इतने डूबे रहते हैं और अपने ही प्रति इतने अधिक लीन रहते हैं कि उस सत्ता की यर्थाथता को ग्रहण नहीं कर सकते। हम ऊपर के धरातल पर ही रह जाते हैं, आकृतियों से चिपटे रहते हैं और आभास मात्र दृश्यमान पदार्थो की पूजा करते हैं ।

आत्मा की सर्वव्यापकता

उपनिषदों के ऋषि जाति के नियमों से सम्बन्ध नहीं थे– आत्मा की सर्वव्यापकता के सिद्धान्त को वे मानव जीवन की चरा सीमाओं तक फैला देते हैं। सत्यकाल जाबाल यद्यपि अपने पिता का नाम नही बताता है। फिर भी उसे आध्यात्मिक जीवन की दीक्षा दी जाती है। यह कथा इस बात का प्रमाण है कि उपनिषद्ों के स्वायता रीति–रिवाज़ को मान्यता नहीं देते अपितु आत्मिक नियमों को मान्यता देते हैं। एक भारतीय विचारक का कहना है कि आत्मा विश्व में उसी प्रकार सर्वव्यापक है जिस प्रकार नमक वाले पानी में नमक व्याप्त हो जाता है । किन्तु इसके गुण वर्णन में आत्मा की उत्पति ह्रदय में होती है । पुरूष जो आत्मा के इस रूप को जानता है वह स्वर्गलोक को प्राप्त होता है। छान्दोग्योपनिषद में आत्मा को ब्रहम माना गया है यह आत्मा अमृत है, भय से रहित [21]। आत्मा न मरती है।न वृद्धावस्था को प्राप्त होती है। इसी भाव को श्री मद्भगवद गीता के द्वितीय अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए समझाई हैं, यह आत्मा न जन्म लेती है न मृत्यु को प्राप्त होती है [22]।उस आत्मा को उस परब्रहम को वही मनुष्य प्राप्त कर सकता है जो यज्ञ युक्त पुरूष है जिसने ब्रहमचर्य का पालन करके पूजा करके परमात्मा को प्राप्त करने का उपाय किया है । छान्दोग्योपनिषद में कहा है कि इस आत्मा को गुरू के उपदेश द्वारा तथा शास्त्रो के ज्ञान द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है । यह आत्मा सत्यकाम और सत्य संकल्प है।

प्राचीन दार्शनिकों के लिए बह्म का अर्थः तमाम तत्त्वों की समष्टि जिसमें से सब वस्तुओं का उद्भव हुआ । ऐसा प्रतीत होता है कि विशुद्ध चेतना के रूप में बह्म की अवधारणा बाद की चीज़ है । सारा संसार, सभी जीव और अजीब पदार्थो सहित, सारी वस्तुएं, विचार आदि बह्म हैं । कार्य और कारण की प्रक्रिया के अन्तर्गत सभी जीवनमय और निर्जीव वस्तुओं का एक–एक करके जन्म होता है। बह्म ही सृष्टि का रचनहारा, संचालक और नाषक है । आत्मा भी इसी का अंश है । बह्म और आत्मा एक ही हैं । हम आसानी से कह सकते हैं कि नमकीन जल का एक भी बिन्दु नमक से अलग नहीं हैं । फिर भी जल की संरचना जल से अलग रहता है अर्थात् आत्मा प्रकाषमान वास्तविकता है । आत्मा व्याप्त है ।

आत्मा ही समस्त विश्व है । आत्मा पद्धार्थो के अन्दर उसी प्रकार व्याप्त होती है । जिस प्रकार नमक पानी में घोलने से सारे पानी में व्याप्त हो जाता है । आत्मा से पदार्थ ठीक उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं जैसे प्रज्जवलित अग्नि से चिंगारीयाँ निकलती हैं और मकड़ी के अन्दर से उनके द्वारा बुने जाने के धागे अथवा बांसुरी की ध्वनि । इस उपनिषद् में आत्मा को अमर कहा गया है, शरीर नाशवान है, शरीर से आत्मा निकल जाने पर शरीर को मृत कहा जाता है ? किन्तु जीवात्मा नहीं मरती वह अमर है, अपरिणामी है । आरूणि उछालक अपने पुत्र श्वेतकेतु से ऐसा कहता है । हे श्वेतकेतु वही आत्मा सत्य है । जब तक कोई व्यक्ति इस तथ्य को जान नहीं लेता तब तक वह अज्ञान में रहता हैं, जब उसे जान लेता है, तब कोई सांसारिक ताप उसे नहीं सताता ।

छान्दोग्य के एक अवतरण में बतलाया गया है कि किसी के लिए जिसे सर्वोतम अमर जीवन की कल्पना की जा सकती है वह यह है कि वह सूर्य देवता के लोक तक पहुँच सके जिसकी उसने सप्रेम उपासना की है तथा उस लोक मैं सम्भाव्य समस्त सुखों में भाग ले सके । यदि प्रकृति सत् है तो उसकी अभिव्यक्तियाँ सत् हैं, और वह निस्संदेह बताती हैं कि हम जन्म के द्वारा असत् से उत्पन्न होते हैं और मृत्यु में असत् को प्राप्त हो जाते हैं । यह विवेचन सिद्ध करता है कि अमरता का सिद्धान्त प्रत्ययवाद और वस्तुवाद के बीच एक समझौता है मानव बुद्धि के लिए जो आत्मज्ञान मूलक आत्मा की कूटस्थता का प्रत्ययवादी निश्चय है, उसको वस्तुवाद के दृष्टिकोण से प्रतिपादित करने का यह प्रयास है । शरीर मनुष्य की आत्मा और उसकी केन्द्रीय सत्ता का स्वरूप क्या है ? आत्मा वह है जो पाप से मुक्त है, वृद्धावस्था से रहित है, मृत्यु एवं शोक से रहित है, भूख और प्यास से रहित है, जो किसी वस्तु की इच्छा नहीं करती यह एक कर्त्ता है, जो सब परिवर्तनों के अन्दर सामान्य रूप से विद्यमान है । जागृत अवस्थाओं में, स्वप्न में, निद्रावस्था में मृत्यु में पुर्नजन्म में और अन्तिम मुक्ति में भी एक समान रहती है । यह एक शुद्ध एवं सरल तत्व है, जिसे कोई नष्ट नहीं कर सकता । मनुष्य की आत्मा यथार्थ में स्वयं कर्ता है, एक सिद्ध है ।यह साध्य पदार्थ नहीं हो सकती, यह पुरूष है जो दृष्टा है, देखे जाने वाले पदार्थ नहीं । मानव आत्मा का सम्बन्ध ऊपर से लेकर नीचे तक सत्ता की प्रत्येक श्रेणी के साथ हैं, इसके अन्दर एक दैवीय अंश है, जिसे हम आनान्दायक चेतना के नाम से पुकारते हैं, अर्थात् आनन्द की अवस्था जिसके द्वारा विशेष क्षणों में यह परमसत्ता के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध से संयुक्त हो जाता है, शरीर धारी आत्मा वह आत्मा है जिसके साथ इन्द्रियों अथवा मन का सम्बन्ध है । आत्मा वह है जो तब दिखाई पड़ती है जब हम अन्य पुरूष की आँख में देखते हैं अथवा पानी भरे पात्र में या दर्पण में देखने पर जो दिखाई पड़ता है, वो आत्मा हैं ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Shri Aurbindoo, Essays on the Gita, p-2.
2. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन पृ.15.
3. डा0 गया चरण त्रिपाठी, वैदिक देवता पृ .141.
4. राधाकृष्णन का विश्व–दर्शन पृ - 5.
5. राधाकृष्णन का विश्व–दर्शन पृ . 215.
6. सनुवाद शंकरभाव्य सहित, पृ .3.
7. छान्दोग्य उपनिषद् पृ 1.33.
8. छान्दोग्योपनिषद सानुवाद पृ . 31.
9. छान्दोग्योपनिषद सानुवाद पृ . 6/2/1.
10. छान्दोग्य उपनिषद् पृ . 7.
11. पं. श्री राम चरण आचार्य, युग निर्माण योजना पृ .28
12. छान्दोग्य उपनिषद् पृ . 7.
13. राधाकृष्णन, पृ. 567.
14. शंकरभाव्य, 2 : 3, 16.17
15. छान्दोग्योपनिषद छटा अध्याय
16. छान्दोग्योपनिषद चतुर्थ खन्ड, पृ . 612.627
17. छान्दोग्योपनिषद अन्नमयं हि सोम्य मनः पृदृ 627
18. छान्दोग्योपनिषद छटा अध्याय, पृ दृ 631
19. छान्दोग्योपनिषद, पृ दृ 8ध्3
20. छान्दोग्योपनिषद, पृदृ 831
21. श्रीमदभगवदगीता, 2 अध्याय
22. छान्दोग्य उपनिषद् पृदृ 843